P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्रत्यभिज्ञादर्शनोक्त सप्तप्रमाताओं का स्वरूप

सुधांशु कुमार शारंगी
एसोसिएट प्रोफेसर,
विश्वेश्वरानन्द बिश्वबन्धु संस्कृत एवं
भारत–भारती अनुशीलन संस्थान,
पंजाब विश्वविद्यालय,
होशियारपुर, पंजाब, भारत

सारांश

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में अनुत्तरा चितिशक्ति अनुत्तर शिवतत्त्व के साथ अभेदात्मना स्फुरित होती है। अनुत्तर के प्रकाशमानत्व होने के कारण यह चिति भी प्रकाशरूपा है। इससे ही समस्त जगत् का प्रसरण होता है। अतः प्रकाशस्वरूपवाली चितिशक्ति ही विश्व की सिद्धि में हेतु है और स्वयं परमशिव ही विश्व के रूप में अवभासित हो होता है। परम तत्त्व से भिन्न यह जगत् कुछ नहीं है। सदाशिव से लेकर भूमि पर्यन्त समस्ततत्त्वों में यह वस्तु ग्राह्य है और यह प्रमाता उसका ग्राहक है। इस प्रकार का व्यवहार समस्त प्राणियों के लिए समानरूप से ही होता है। किसी एक प्रमाता को प्रमेय ज्ञान जिस प्रकार से होता है, उसी प्रकार ही अन्य प्रमाता को भी संवेदन होता है। यह प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने विश्व के वैचित्र्य में अनुरूप ग्राह्य और ग्राहक को कारण माना है। ग्राह्य प्रमेय है तथा ग्राहक प्रमाता है। जिस प्रकार का प्रमाता है, उसके अनुरूप प्रमेय की कल्पना की जाती है। प्रत्यभिज्ञा शास्त्र सात प्रमाताओं का ग्रहण करता है। जैसे – शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल एवं सकल। इन प्रमाताओं से ग्राह्य और ग्राहक की उत्पत्ति हो जाती है।

मुख्य शब्द : शिव, स्वातन्त्र्य, चितिशक्ति, प्रपञ्च, विलय,,अनुत्तर, विश्वोत्तीर्ण, विश्वमय, प्रमाता, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल, सकल, ईश्वर।

प्रस्तावना

परमशिव की स्वातन्त्र्यरूपा चितिशक्ति ही इस जगत् का अनन्य हेतु है। यह चितिशक्ति पराशक्तिरूपा होने के कारण परमशिवतत्त्व के सृष्टि आदि क्रियाओं के साथ यह भी कर्त्ता बन जाती है। परमशिव तो अपनी इस शक्ति के द्वारा ही जागतिक प्रपञ्च का निर्माण तथा संहार आदि करता है। उस अनुत्तर शिवतत्त्व से अभिन्न होने के कारण यह चितिशक्ति भी सृष्टि आदि की कल्पना होती है। अतः कहा गया है कि इस चिति शक्ति के प्रसृत होने पर ही जगत् का उन्मेष होता है। जब तक यह चितिशक्ति प्रसृत होती रहती है,तब तक इस जागतिक प्रपञ्च स्थिति दशा को प्राप्त किये रहता है। तब तक ही उसकी सत्ता अनुभूत होती है। जब यह प्रसृत नहीं होती है अर्थात् प्रसरण से निवृत्त हो जाती है, तब यह सम्पूर्ण जागतिक प्रपञ्च विलय दशा को प्राप्त हो जाता है। समस्त जगत् अपने कारण में लय भाव को प्राप्त कर जाता है। इस प्रकार चितिशक्ति के प्रसृत होने पर यह जगत् उत्पन्न तथा स्थित होता है और प्रसरण से निवृत्त होने पर संहार दशा को प्राप्त कर जाता है। यह सामान्यरूप से अनुभूत होता है।

इस सम्पूर्ण जागतिक प्रपञ्च का कारण माया, प्रकृति आदि तत्त्व नहीं हो सकते। क्योंकि ये चित्प्रकाश से भिन्न है। अनुत्तर शिव के साथ ये एकरूपता को प्राप्त नहीं करते। इसलिए ये प्रकाशमानस्वरूपक नहीं होते हैं। प्रकाशस्वरूपक न होने के कारण असत् भी है। इसलिए इनका जगत्कारणत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परन्तु अनुत्तरा यह चितिशक्ति अनुत्तर शिवतत्त्व के साथ अभेद है। अनुत्तर के प्रकाशमानत्व होने के कारण यह चिति भी प्रकाशरूपा है। इससे ही समस्त जगत् का प्रसरण होता है। अतः प्रकाशस्वरूपवाली चितिशक्ति ही विश्व की सिद्धि में हेतु है। माया, प्रकृति आदि विश्व की सिद्धि में कथमपि हेतु नहीं हो सकते हैं। समग्र देश, काल तथा आकार इस चितिशक्ति से सृष्ट है तथा अनुप्राणित है। अतः देश, काल तथा आकार से अवच्छिन्न कोई भी इसके स्वरूप को भेदन करने में समर्थ नहीं हो सकता है। इसलिए कहा गया है कि यह चिति व्यापक है। हर जगह देश, काल तथा आकार आदि में व्याप्त है। यह नित्योदित है। क्योंकि यह चिति मूल चेतना होने के कारण इसका अस्त कभी नहीं होता है। अर्थात् यह सदा स्पन्द में वर्त्तमान रहते हुए क्रियाशील रहती है। यह ही समग्र प्रपञ्च का हेतु है – यह सिद्ध होता है। यहाँ हम यह भी कह सकते हैं कि स्वयं परमशिव ही विश्व के रूप में अवभासित हो रहा है। परम तत्त्व से भिन्न यह जगत् कुछ नहीं है। अतः

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिकों ने इसे शिवाद्वय माना है। क्योंकि अनुत्तर शिव और अनुत्तरा शक्ति चिति अभेद ही है। यह शिव ही स्वकीय अभेदात्मना शक्ति से ही जगत् का प्रकाशन करता है। अतः अनुत्तरा शक्ति अनुत्तर की तरह इस जागतिक प्रपञ्च का कारण लौकिक दृष्टि से कह सकते हैं। परन्तु सिद्धान्त रूप से जब यह जगत् चित् से अभेद होते हुए अभिव्यक्त होता है, तो इन दोनों में भेदबुद्धि का अभाव होता है। जिस कारण इन दोनों में कार्य और कारण की सत्ता नहीं बन पाएगी। इस प्रकार से यह सामान्य प्रश्न उपस्थित हो सकता है। इसके समाधान में यह कहा जाता है कि यह भगवती चितिशक्ति स्वच्छ तथा स्वतन्त्र स्वरूपवाली है। इस चितिशक्ति में किसी भी प्रकार के भेदतत्त्व का मिश्रण न होने से स्वच्छ तथा सृष्टि आदि क्रिया की निष्पत्ति स्वयं करने से स्वतन्त्र है। इस प्रकार यह चितिशक्ति अनन्त जागतिक स्वरूप में अभिव्यक्त हो जाती है। एक होने पर भी अनेक घट, पटादि स्वरूपों में स्फुरित होती है। यही अभिव्यक्त स्वरूप कार्य तथा चितिशक्ति कारण है। इस प्रकार यह ही पारमार्थिक कार्यकारणभाव है। लौकिककार्यकारण की सत्ता में क्रम होता है। क्रम के कारण ही कार्य से कारण की पृथक् सत्ता विद्यमान रहती है। परन्तु यहाँ पर यह क्रम सम्भव नहीं है। क्योंकि चित् का जागतिक स्वरूप में अभिव्यक्त होना उन्मेष है। यह उन्मेष और चितिशक्ति एकसाथ विद्यमान होने से क्रम का अभाव है। यह प्रमाण, प्रमाता और प्रमेय स्वरूप विश्व की अभिव्यक्ति में चिति ही कारण है। अतः इस प्रकार से यह सिद्ध होता है कि जो चितिशक्ति स्वतन्त्र है, जो किसी भी प्रकार के देश, काल तथा आकारादि से परिच्छिन्न न होने से अपरिच्छिन्न है और जो स्वप्रकाश स्वरूपवाली है, उसकी सिद्धि में लौकिक प्रमाण अनुपयुक्त है।

वस्तुतः चितिशक्ति की स्वातन्त्र्य कभी भी न्यून नहीं होता है। यह शक्ति सृष्टि, स्थिति आदि में स्वतन्त्र है। जैसे की पहले ही हम जानते हैं कि इस शक्ति का दो रूप है। जैसे – १.विश्वोत्तीर्ण और २.विश्वमय। विश्वमय की स्थिति विश्वरूपता है। सदाशिव से लेकर भूमि पर्यन्त तत्त्वों के प्रकाशन में यह चिति कारण है। स्वातन्त्र्य के कारण प्रकाशन के सदृश संहार में भी हेतु है। यह संहार विश्वोत्तीर्ण अवस्था है। यह स्थिति अद्वय जो परतत्त्व परमशिव है, उसके साथ समरसता को बताता है। समानो रसो स्थितिः वा, तस्य भाव सामरस्य। अर्थात् संहार की अवस्था में चिति समस्त विश्व कारण संहरण करती हुए समस्त विश्व को परमतत्त्व के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त कर जाना ही सामरस्य है। जब इस चितिशक्ति के स्वातन्त्र्य की जानकारी पूरी तरह से होती है, तब यह शक्ति भोग और मोक्ष स्वरूपवाला विश्व की अभिव्यक्ति में कारण बनती है। उपाय की दृष्टि से यहाँ पर विश्व नील, सुख, देह तथा प्राण है, उसकी सिद्धि ही विश्वसिद्धि है। इन प्राण आदि सिद्धिरूपा है। यह सिद्धि प्रमाणों के आरोह क्रम से विमर्शमयप्रमाता के साथ आवेश है। प्रमाता जो ज्ञान करने वाला है, वह जब किसी ज्ञेय घट पदार्थ के बोध की इच्छा से प्रमाणों के द्वारा उपारुढ़ होकर ज्ञेय के आकार में आकारित होता है, तब अयं घटः इस प्रकारक तदाकाराकारित ज्ञेय पदार्थ की कल्पना होती है। उसके पश्चात् प्रमाता घटमहं जानामि इस पदार्थ ज्ञान को प्राप्त करता है। इस समय पदार्थ के बाह्यरूप का विलय होकर प्रमाता में विश्रान्ति होती है। यह ही प्रमाणों के उपारोह क्रम से विमर्शमय प्रमाता के साथ आवेश है। यह आवेश ही स्वात्मैकत्व तादात्म्य है। इस प्रकार तादात्म्य में यह चितिशक्ति ही उपाय है। इस प्रकार यह उपाय सरल उपाय के रूप में कहा गया है।[1]

क्योंकि सदाशिव से लेकर भूमि पर्यन्त समस्ततत्त्वों में यह वस्तु ग्राह्य है और यह प्रमाता उसका ग्राहक है – इस प्रकार का व्यवहार समस्त प्राणियों के लिए समानरूप से ही होता है। किसी एक प्रमाता को प्रमेय ज्ञान जिस प्रकार से होता है, उसी प्रकार ही अन्य प्रमाता को भी सम्वेदन होता है। इसलिए इनके सम्वेदन में किसी भी प्रकार की विलक्षणता प्राप्त नहीं होती है। परन्तु योगियों के सम्वेदन में विलक्षणता प्राप्त होती है। ग्राह्य और ग्राहक के स्वरूप का सम्वेदन करते समय उन योगियों को अपने चित् स्वरूप की स्मृत्यभाव कभी भी नहीं होता है। वे सतत अपने चिदात्मकता स्वरूप के प्रति सचेत रहते हैं। जैसे कि प्रकाशस्वरूपक स्मृतिज्ञान को प्राप्त करने वाला हूँ, और मुझ से भिन्न समस्त ग्रह्य पदार्थ की सत्ता अनित्य है। इस प्रकार विविक्तबुद्धि के कारण यह सम्वेदन योगियों में विलक्षण है।[2]

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने विश्व के वैचित्र्य में अनुरूप ग्राह्य और ग्राहक को कारण माना है। ग्राह्य प्रमेय है तथा ग्राहक प्रमाता है। जिस प्रकार का प्रमाता है, उसके अनुरूप प्रमेय की कल्पना की जाती है। इसमें सात प्रमाताओं का ग्रहण किया गया है। जैसे – शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल एवं सकल।

शिव

यह शिवभट्टारक परप्रमाता है। शिवतत्त्वात्मक इसमें अधिष्ठाता देवता शिवभट्टारक है। यह शिव प्रकाशस्वरूप, स्वात्मविश्रान्त होने के कारण महानन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया से परिपूर्ण, अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण, समस्त विकल्पों से रहित, विशुद्ध, प्रशान्त, सृष्टि तथा विनाश से रहित, कार्ममलों की वासना के क्षीण होन के कारण विमलीकृत, बुद्धिरूपी मुकुर में प्रकाशस्वरूप एवं सर्वज्ञतादि गुणों से युक्त आत्मा ही शिव है, जिसमें छत्तीसतत्त्वात्मक प्रपञ्च निहित है। यह शिवतत्त्व निर्मल धीतत्त्व में रहता है।[3]

षट्त्रिंशत्तत्त्वसंन्दोह में शिवतत्त्व के स्पष्टीकरण में कहा गया है कि जब परमशिव अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति के द्वारा, अखिल जगत् की रचना के लिए किञ्चित् चलनात्मक दशा का अनुभव करता है, तो उस प्रथम स्पन्द को शिवतत्त्व कहा जाता है।[4]

इसमें 'अहमस्मि' (मैं हूँ') का अनुभव होता है। परन्तु जागतिक अनुभव से शून्य रहता है। यहाँ मैं और जगत् – दोनों अभिन्न रहते हैं।

मन्त्रमहेश्वर

मन्त्रमहेश्वर सदाशिवतत्त्वावस्थित प्रमाता है। इसके अधिष्ठाता सदाशिवभट्टारक है। इसमें इच्छाशक्ति की प्रधानता। अतः इच्छाशक्ति का प्राधान्य होने के कारण एवं ज्ञानोद्रेक होने से शिव का आभासन ही सदाशिव तत्त्व है।

इसमें शिव के अन्तर्मुख स्पन्द में ज्ञान की तथा बहिर्मुख स्पन्द में क्रिया की अस्फुट एवं निर्विषयक अभिव्यक्ति होती है। यह शिव का अन्तर्मुख स्पन्दन सदाशिव तत्त्व है।[5]

यद्यपि शिव तथा शक्ति की अवस्था अभेद है तथापि यह सदाशिव तत्त्व की अवस्था भेदाभेदावस्था है। इस अवस्था में बाह्य यथार्थरूप से भासित नहीं होता है। यद्यपि शिवतत्त्व से अभेद की भूमिका में अवस्थिति है, तथापि इसमें आन्तर बहिर्मुखता का अस्फुट आभासन होने के कारण भेद की भूमिका में भी अवस्थित है। अतः यह सदाशिव तत्त्व शिव की भेदाभेद भूमिका है। इस अवस्था में विश्व अहन्ता से आच्छादित है और इसमें अस्फुटरूप से इदन्ता रहता है। जिसमें विश्व का सदाशिव से परापर स्वरूप प्राप्त होता है। इस भूमिका का अनुभविता प्रमाता मन्त्रमहेश्वर है। तथा इसमें 'अहमिदम्' की अनुभूति होती है। 'अहमिदम्' की प्रतीति में भी 'इदन्ता' अहन्ता से आच्छादित है। अहं एवं इदम् (जगत्) अंश का अस्फुट उल्लास को ही सदाशिव तत्त्व कहा जाता है। जैसे कि –

तत्र यदा अहमित्यस्य यदधिकरणं चिन्मात्ररूपं तत्रैवेदमंशमुल्लासयति तदा तस्यास्फुटत्वात् सदशिवता अहमिदमिति। (ई०प्र०वि०)

इसी सदाशिव तत्त्व की भूमिका में शिव अर्थात् सत् की प्रथमाभिव्यक्ति है। अतः इसे सादाख्य तत्त्व भी कहा जाता है। जैसे –

यतः प्रभृति सदिति प्रख्या, सादाख्याश्च सदाशिवशब्दरूपाया इदं वाच्यं तत्त्वम्। तत्सादाख्यं तत्त्वम्। षट्त्रिंशत्तत्त्वसंन्दोह में सदाशिव तत्त्व की यही परिभाषा दी गयी है।[6] इसमें इदमंश स्फुट नहीं रहता है। इसका प्रमेय विश्व का अस्फुट ज्ञान है।

मन्त्रेश्वर

मन्त्रेश्वर ईश्वरतत्त्वाधिष्ठित प्रमाता है। इसको अणु सदाशिव भी कहा जाता है। इसमें ज्ञानशक्ति की प्रधानता तथा इसके अधिष्ठाता ईश्वरभट्टारक है। उत्पलाचार्य के अनुसार शिव की इच्छा का बहिर्मुख स्पन्दन ईश्वरतत्त्व है। जैसे कि कहा गया है कि –

ईश्वरो बहिरुन्मेषो निमेषोऽन्तः सदाशिवः।
(ई०प्र०वि० आगम)

इसमें 'इदमहं' की प्रतीति होती है। इस भूमिका में अनुभविता प्रमाता मन्त्रेश्वर का अनुभव इदं–अहं के रूप से होता है। इसमें इदन्ता और अहन्ता समान रूप से स्फुट होते हैं। इसी तत्त्व को षट्त्रिंशत्तत्त्वसंन्दोह में स्पष्ट किया गया है, जैसे –

विश्वं पश्चात्पश्यन्निदन्तया निखिलमीश्वरो जातः।[7]

यह ईश्वर तत्त्व विद्यातत्त्व के ऊपर है। इसमें क्रमशः आठ पुर विद्यमान है। जैसे – शिखण्डी, श्रीकण्ठ (श्रीगल), त्रिमूर्त्ति (यहाँ पर श्रीतन्त्रालोक के व्याख्याकार श्री परमहंस मिश्र जी ने त्रिनेत्र कहा है), एकनेत्र, एकरुद्र, शिवोत्तम, सूक्ष्मरुद्र और अनन्त।[8]

इनको विद्येश्वर कहा जाता है। स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार ये पूर्वदिशा से लेकर ईशानान्त आठ दिशाओं में रहते हैं। साढे तीन करोड मुख्य मन्त्रेश्वरों के नायक होने से इन्हें विद्येश चक्रवर्त्ती भी कहते हैं। ईश्वरतत्त्व में इदन्ता और अहन्ता का समान परिस्फुटन होता है। जिन्होंने इस ऐशतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है, वे ही इस तत्त्व में रहने के लिए अधिकारी होते हैं। इनको मन्त्रेश्वर कहा जाता है।

मन्त्र

मन्त्र शुद्धविद्यातत्त्वाधिष्ठित प्रमाता है। इस शुद्धविद्या को सद्विद्या भी कहा जाता है। इसमें इदन्ता और अहन्ता की सामानाधिकरण्यात्मस्फुट प्रतीति होती है। अर्थात् इस भूमिका में एक ही अधिकरण में इदम् और अहम् – इन दोनों का अनुभव होता है। षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह में भी इदन्ता और अहन्ता का अभेद बोध को शुद्धविद्या कहा गया है। जैसे –

सा भवति शुद्धविद्या इदन्ताहन्तयोरभेद मतिः।

शुद्धविद्या परापर दशावाली होने से इसमें अहमिदं की इदं च अहं च – इस प्रकार का शुद्धपरामर्श होता है। अर्थात् अनुरूप विश्व की सत्ता के साथ साथ स्वकीय सत्ता का रहना है। भेद की प्रतीति होने पर भी अभेद का अनुभव होना – इसी कारण इस स्थिति को शुद्धविद्या कहा जाता है। आचार्य उत्पल ने भी इदन्ता और अहन्ता का सामानाधिकरण्यात्मक प्रतीति को शुद्धविद्या कहा है।

विज्ञानाकल

शुद्धविद्या से नीचे और माया से ऊपर स्थित प्रमाता विज्ञानाकल कहलाता है। यहाँ पर विज्ञान और अकल – यह दो पद है। अकल का तात्पर्य यह है कि प्रमाता शिवतत्त्वावस्थित रहते हुए शिवरूप आत्मबोध को प्राप्त करना है। आचार्य जयदेव सिंह जी ने अकल को स्पष्ट करते हुए कहा है कि – The experient established in Śiva tattva and identified with Śiva. त्रिकदशन में सृष्टि की द्विविधता प्रतिपादित है। जैसे – शुद्ध और अशुद्ध। शुद्ध सृष्टि शुद्धाध्व तथा अशुद्ध सृष्टि शुद्धेतराध्व कहलाता है। इनमें से शिव से लेकर शुद्धविद्या तक सृष्टि शुद्धाध्व तथा माया से लेकर पृथिवी तक की सृष्टि शुद्धेतराध्व है। शुद्धाध्व के प्रमाता सार्वभौमिकसत्ता से युक्त होते हैं। ये सभी प्रकार के सीमाओं से मुक्त रहते हुए विश्व की अनुभूति दूसरे रूप से करते हैं। इस शुद्धाध्व के मध्य स्थित प्रमाताओं को विज्ञानाकल कहा जाता है।[9]

अतः बोधादिरूप की एकता रहने पर भी ईश्वर की इच्छाभेद से उन प्रमाताओं की भिन्नता भासती है। ये ही विज्ञानाकल कहलाते हैं। इसमें सर्वत्र अप्रतिहत शक्ति से सम्पन्न ईश्वर ही अनेकरूपों से स्वयं की इच्छा से भासित होता है। उससे भिन्न अन्य कोई परमार्थ नहीं दिखता है। इसलिए यह व्यापक तथा नित्यबोध स्वरूपवाला होने पर भी 'अहं भेदेन निर्भासे' इस प्रकार भेदपूर्वक निर्भास होता है। इस प्रकार ईश्वर की इच्छाविशेष रहने के कारण उन शरीरादि से शून्यान्त प्रमातृपद से उत्तीर्ण होने वालों का बोधरूपत्व, व्यापकत्वादि धर्मसमूह के ऐक्यरूप रहने पर भी परस्पर भेद रहता है। यह ही विज्ञानाकल है। विज्ञान + अकल = इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसमें विज्ञानमात्र ही रहता है। यह कर्त्तृताशाक्ति से शून्य तथा पूर्व अवस्थावाला जो सकल प्रमाता और प्रलयाकल प्रमाता का प्रमेयक्षेत्र था वही प्रमेयक्षेत्र इस विज्ञानाकल में कुछ विकसित हो जाता है। इसमें अभेद का दर्शन होता है, क्योंकि यह मायीय और कार्म मलों से रहित रहित है। इसमें केवल आणव मल ही

रहता है। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृत्ति विमर्शिनी में कहा गया है कि –

बोधरूपता नित्यत्वं विभुत्वमित्यादि लक्षणं यद्यपि एषां न भिन्नं, तथापि ईश्वरेच्छा यतस्तथा भिद्यते–नित्यव्यापकबोधमात्ररूपो हि अहं भेदेन निर्भासे–इति; ततस्तेषां युक्त एव अन्योऽन्यं भेदो ग्राह्येभ्यो ग्राहकान्तरेभ्यश्च। ते च शास्त्रे विज्ञानमात्रं कर्तृताशून्यं मायीयभेदावभासशून्यं च एषां स्वभाव इत्येवं विज्ञानाकल इति उक्ताः।[10]

यह विज्ञानाकल एक मल से युक्त होने के कारण इसे पुद्गल भी कहा जाता है। विज्ञानाकल आठ हैं, जैसे – अघोर, परमघोर, घोररूप, घोरमुख, भीम, भीषण, वमन और पिवन।[11] ये आठों सृष्टि, स्थिति और संहार रूप अनुग्रह करने के अधिकारी है।

प्रलयाकल

मायातत्त्वावस्थित प्रमाता प्रलयाकल अथवा प्रलयकेवली है। अतः इसका सम्बन्ध शुद्धेतराध्व से है। जडरूप होने के कारण अबोधरूप प्राण और बुद्धि में जिनकी 'अहन्ता' अर्थात् चमत्कारसारपूर्वक कर्तृत्व शक्ति रहती है, वे प्रलयाकल कहे जाते हैं। कलातत्त्व से उपलक्षित कार्य–कारण से रहित बोधात्मक कर्त्ता होते हैं, क्योंकि वे लोग प्रलय पर्यन्त उसी प्रकार ही रहते हैं और उत्तर काल में तो कार्य–कारण भाव से सम्बन्धित होकर अवस्थित रहते हैं, जब कि उनमें केवल आणवमल ही नहीं रहता है। परन्तु वासना–संस्काररूप धर्माधर्मात्मक कार्ममल रहता है। इसमें मायीयमल विकल्परूप से रहता है।

पं० जयदेव सिंह के अनुसार प्रलयकेवली को स्पष्टरूप से इदन्ता और अहन्ता का स्फुट बोध नहीं होता है। सुषुप्ति के समान ही इसमें भी शून्यता का भान होता है। यह संहार और सृष्टि के बीच में प्रकृति से तादात्म्य रखता है। शून्यावस्था में पहुँचे हुए योगीं भी प्रलयाकल प्रमाता ही है। प्रलयाकल में कला इत्यादि के विलीन हो जाने पर, नई सृष्टि के आरम्भ होने तक प्रलयाकल मायातत्त्व के भीतर विद्यमान रहता है। इसमें आणव और मायीय मल वर्त्तमान रहते हैं। कार्ममल चला जाता है।[12]

मायीयमल के वैकल्पिकत्व में यह कह सकते हैं कि इनकी भिन्नवेद्यप्रथा सम्वेद्य सुषुप्त काल में ही होती है, अपवेद्य काल में नहीं होती है। इसलिए मायीयमल इनमें विकल्परूप से रहता है।

सकल

यह मायाप्रमाता, परिमितप्रमाता तथा संकुचितप्रमाता के नाम से जाना जाता है। इस का सम्बन्ध शुद्धेतराध्व से है। इसमें तीनों मल प्राप्त होतें हैं, अतः यह जीव की सृष्टि दशा है। जयदेव सिंह के अनुसार ये वे देव और जीव हैं, जिन्हें सच्चा आत्मज्ञान नहीं होता और जिनकी चेतना मुख्यतः भेद की होती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार मन्त्रमहेश्वर से लेकर सकल तक प्रमाता से परे प्रकाश ही एक स्वरूपवाले शिवभट्टारक प्रकाशैकरूप भाववाले हैं। शिवभट्टारक के प्रकाशैकरूप वाला होने से यह द्योतित होता है कि इसमें विमर्श अस्फुटरूप से तथा प्रकाश स्फुटरूप से भासित हो रहा है। यह ही प्रकाशैकघनरूप परमशिव विश्व से परे, विश्व के स्वरूप वाले तथा परमानन्दस्वरूप वाला है। इससे इस प्रकार ही शिव से लेकर पृथिवी तक समस्त प्रमेय अभेद से ही स्फुरित होता है। इसमें कोई अन्य ग्राह्य अथवा ग्राहक नहीं है। वस्तुतः परमशिवभट्टारक ही अनेक प्रकार सहस्र वैचित्र्यों से अभिव्यक्त होता है। यह ही परमशिवभट्टारक के विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय रूप है। यहाँ पर श्री जगदीश चन्द्र चट्टोपाध्याय जी ने कहा है कि –

तत्र आणवेकैन मलेन संयुक्तो विज्ञानाकलः, द्वाभ्यामाणवमायीयाभ्यामववेद्य प्रलयाकल, त्रिभिः आणव–मायीय–कार्ममलैः संवेद्यः कलादिधरण्यन्ततत्त्वमयः सकलः इति।।

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, श्रीक्षेमराज, व्याख्या० जयदेव सिंह, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी

श्रीतन्त्रालोक, व्याख्या० श्री परमहंस मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

श्रीविज्ञानभैरव, व्याख्या० जयदेव सिंह, मोतिलाल बनारसी दास, वाराणसी

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, सम्पा० मधुसुदन कौल, Research Department, Jammu & Kashmir State

शिवसूत्र, व्याख्या० जयदेव सिंह, मोतिलाल बनारसी दास, वाराणसा

षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह, व्याख्या० डॉ० कैलाशपति मिश्र, कला प्रकाशन, वाराणसी

मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, व्याख्या० श्रीपरमहंस मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

अंत टिप्पणी

1. *ग्राह्यग्राहकसम्वित्तिः सामान्य सर्वदेहिनाम्।*
   योगिनां तु विशेषोऽयं सम्बन्धे सावधानता।।, विज्ञानभैरव, १०६
2. *इस पर J.C.Chatterjee ने शिवसूत्रविमर्शिनी में कहा है कि – 'सर्वदेहिनां सकलप्रमातृणां वेद्यवेदकसम्वेदनं निर्विशेषम्। योगिनां तु अत्र आद्यन्तमध्यदशावगाहिप्रमातृ–स्वरूपा–विस्मरणरूपा समाधानतेति।।' १–१–१*
3. *आदर्शे मलरहिते यद्वहवदनं विभाति तद्वदयम्।*
   शिवशक्तिपातविमले धीतत्त्वे भाति भारूपः।।
4. *यदयमनुत्तरमूर्त्तिर्निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत्सृष्टुम्।*
   पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः।।, ष०त०सं० १
5. *ईश्वरो बहिरुन्मेषो निमेषोऽन्तःसदाशिवः। ई०प्र०का०*
6. *स्वेच्छाशक्तियुद्गीर्णं जगदात्माहन्तया समाच्छाद्य।*
   निवसन् स एव निखिलानुग्रहनिरतः सदाशिवोऽभिहितः।।
   ष०त०सं० ३
7. *ष०त०सं०, ४*
8. *विद्यातत्त्वोर्ध्वमैशं तु तत्त्वं तत्र क्रमोर्ध्वगम्।*
   शिखण्ड्याद्यमनन्तान्तं पुराष्टकयुतं पुरम्।।
   शिखण्डी श्रीगलो मूर्त्तिरेकनेत्रैकरुद्रकौ।
   शिवोत्तमः सूक्ष्मरुद्रोऽनन्तो विद्येश्वराष्टकम्।।
   क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थानं सप्तानां नायको विभुः।
   अनन्त एव ध्येयश्च पूज्यश्चाप्युत्तरोत्तरः।।
   श्रीतन्त्रा० ३४१,३४२,३४३
9. *बोधादिलक्षणैक्येऽपि तेषामन्योऽन्यभिन्नता।*
   तथेश्वरेच्छाभेदेन ते च विज्ञानकेवलाः।। ई०प्र०वि०वि०, ३/२/७
10. *ई०प्र०वि०वि०, ३/२/ ७*
11. *विज्ञानकेवलानष्टौ बोधयामास पुद्गलान्।*
    अघोरः परमो घोरो घोररूपस्तदाननः।।
    भीमश्च भीषणश्चैव वमनः पिवनस्तथा।
    मालिनी, १/१६–२०
12. *द्रष्टव्य० प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, जयदेव सिंह*